

भारतीय श्रमण-ब्राह्मण धारा में ब्रात्य

विषय संकेत:- ब्रात्य, श्रमण संस्कृति, ब्राह्मण संस्कृति

भारतीय समाज में ब्राह्मणों,
श्रमणों की तरह ब्रात्यों का एक
वर्ग था। प्रस्तुत शोध आलेख में
इस आर्य जाति की उत्पत्ति, स्थिति,
सामाजिक अवदान और परम्परा को
अन्वेषित करने का प्रयत्न किया गया
है।

भारतीय संस्कृति निश्चय ही अनेक धाराओं के मध्य संवाद और आदान-प्रदान के माध्यम से विकसित हुई है। इसमें श्रमण और ब्राह्मण, निवृत्ति और प्रवृत्ति में संघर्ष और समन्वय की प्रक्रिया निरन्तर चलती रही है। सांस्कृतिक निभञ्जन और सात्मीकरण की प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण विचारधारा के प्रतिनिधि हैं- ब्रात्य। ये मूलतः श्रमण धारा के थे या ब्राह्मण धारा के, इसका आज तक निर्धारण नहीं हो पाया है। हमारे साहित्य से ब्रात्यों की पहचान के विषय में यों तो अनेकों निष्कर्ष निकलते हैं पर विशेष ध्यान की बात यह है कि यदि वह मूलरूप से श्रमण थे अथवा विदेशी या किसी अन्य धारा के तो 'ब्रात्यस्तोम विधि' द्वारा ब्राह्मण परम्परा में दीक्षित कर लिए जाते थे। इनके समंजन से वर्णसंकर जातियों का विकास हुआ जो चार वर्णों के अन्तर्गत समायोजित होती रहीं और जिन्होंने उत्तर वैदिक धर्म और दर्शन पर प्रभाव डाला, विशेषकर उपनिषद और भगवद्गीता इससे प्रभावित हुए।

यदि ब्रात्य प्राग्वेदीय रुद्रोपासक थे तो इनका अन्वय श्रमण और ब्राह्मण दोनों संस्कृतियों से हो सकता है। यदि ये मौलिक रूप से ब्राह्मण थे तो श्रमण परम्परा में दीक्षित हो जाने से ब्राह्मण परम्परा से इन्हें च्युत मानते हुए इनके बहिष्कार के सब उपाय किए गए। यही कारण है कि साहित्य में ब्रात्य कहीं अत्यधिक सम्मान और श्रद्धा के पात्र और कहीं अत्यन्त गर्हित और गिरे हुए निरूपित किए गए हैं।

अथर्ववेद का पन्द्रहवां काण्ड ब्रात्यकाण्ड है जिसके ऋषि अथवा देवता अध्यात्म ब्रात्य कहे गए हैं। स्पष्टतः अध्यात्म शब्द से आत्मज्ञान की परम्परा वाली श्रमण संस्कृति का ही द्योतन होता है। ब्रात्य कौन थे? कहाँ के थे और उनकी सामाजिक पहचान क्या थी? यह भारतीय पुराइतिहास की एक उलझी हुई गुत्थी है। एक ऐसी अनबूझ पहेली जिसके उत्तर अनेक और विविध हैं किन्तु आज तक अनिश्चित और संशययुक्त हैं। मानों ब्रात्य इतिहास के आवरण में छिपा कोई रहस्य है या मानो ब्रात्य उन सभी व्याख्यानों को ललकारते हों जो समय-समय पर विद्वानों ने दी है। ब्रात्यों के स्वरूप के विषय में विद्वानों ने बजाय ऐतिहासिक तथ्यों को प्रस्तुत करने के या तो अटकलें लगाई हैं या गूढ़ दार्शनिक व्याख्याएँ दी हैं।

आचार्य सायण ने ब्रात्य को विद्वत्तम, महाधिकार, पुण्यशील, विश्व सम्मान्य और ब्राह्मण विशिष्ट कहा है।¹

डॉ० जगदीश दीक्षित² के अनुसार जो निजी जीवनचर्या में ब्रतों का कठोरता से पालन करते थे वे ब्रात्य थे। वस्तुतः ब्रात्य निवृत्तिवादी आर्य हैं जिनसे प्रवृत्तिवादी आर्यों को संघर्ष करना पड़ा था। ब्रात्य वे थे, जिनसे कीकट देश में वेदवादियों का संघर्ष हुआ था और देव-पूजकों ने जिनके राज पुमगंद से गोधन तथा अन्य धनों का हरण करने के लिए इन्द्र का आह्वान किया था। ऐसा ऋग्वेद, पद्मपुराण, नारदीयपुराण, देवी भागवत और महाभारत के कर्ण पर्व में लिखा है।

ब्रात्य देवयज्ञ विरोधी थे। ये असुरपूजक और आर्हत धर्मी थे। डॉ० बुद्ध प्रकाश³ के अनुसार वृत्र और ब्रात्य एकार्थक हैं तथा पुरोहित वर्ग के सूचक हैं। यदि ब्रात्य वृत्र के लिए प्रयुक्त हुआ है तो ऋग्वेद में वृत्र को इन्द्र का शत्रु और असुर बताया गया है और इन्द्र को वृत्रधन कहा गया है। जो देव और असुरों की प्रतिद्वंद्विता का सूचक है। इस दृष्टि से ब्रात्य असुरपूजक भारतीय

थे जिनसे देवोपासकों के युद्ध हुए थे, जिन्हें परम्परा देवासुर संग्राम कहती है।

ब्रात्यों का आत्मसाधना में दृढ़ विश्वास था। पवित्र अनुष्ठानों में ब्रात्यों का महत्त्वपूर्ण स्थान था।¹⁴ हम आज की जैनधर्म साधना से इनकी तुलना करें तो जैन आचार में आज भी पंचमहाव्रत और अणुव्रतों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। योग दर्शन में नियमों के अन्तर्गत इन पांच महाव्रतों की महती प्रतिष्ठा है।¹⁵ जैनों के आदि तीर्थंकर ऋषभदेव ने योगाभ्यास के द्वारा परम पद प्राप्त किया था। प्रश्नोपनिषद के 'शंकर भाष्य' में ब्रात्य को स्वभाव से शुद्ध श्रमण कहा गया है। अथर्ववेद और ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रयुक्त अन्यव्रत, अपव्रत से ब्रात्य का सम्बन्ध है, जिसका अर्थ है भिन्न रीति का पालन करने वाला। इस प्रकार ब्रात्य का अर्थ हुआ ब्रात्यों में दीक्षित जिसने आत्मानुशासन की दृष्टि से स्वेच्छापूर्वक व्रत स्वीकार किये हैं वे ब्रात्य हैं।¹⁶

वैदिक व्याकरण के आधार पर ब्रात्य ब्रात से बना है जो संघ, गण और समूह का सूचक है।¹⁷ पाणिनि और काशिका ने इस अर्थ को स्वीकार किया है। काशिका के अनुसार 'ब्रात ब्रातेन जीवेति'¹⁸ इस प्रकार ब्रात का अर्थ समूह (संघ) होता है, ब्रात पद्धति से जीना होता है। ब्रात का पति ब्रात्य है। ब्रात संघ और पूरा शारीरिक श्रम करते थे। उनका कार्य ब्रात कर्म या ब्रातिना: कहलाता था। ब्रात्यस्तोमगणयज्ञ था। ये गणव्यवस्था मानते थे।

भट्टो जी व्याख्या करते हुए कहते हैं कि ब्रातिना: (ब्रात) शरीरायसेन थे ना कि बुद्धि वैभवेन अर्थात् वे श्रमजीवी थे। किन्तु ध्यातव्य है कि पुरुषार्थमूलक और श्रममूलक होने से ही ब्रात्य श्रमण कहलाये। चरित्र, त्याग, आध्यात्मिकता और श्रम या सेवा ही इस वर्ग की पहचान थी। मौन रहना, यौगिक क्रियायें करना और प्राणायाम द्वारा अतीन्द्रिय शक्तियों को जाग्रत करना इनका लक्ष्य था। ब्रात को प्रकृति से सत्यव्रत कहा गया है।¹⁹

डॉ० सम्पूर्णानन्द के अनुसार जीवों की समष्टि ब्रात है, उसका पति (पालक, रक्षक, स्वामी) परमात्मा है। इन्द्रियादि का संघात ब्रात है उसका अधिष्ठाता जीवात्मा है।²⁰

के०पी० चट्टोपाध्याय के अनुसार सामाजिक इकाई के लिए ऋग्वेद¹² में ब्रात शब्द आया है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से संस्कृत के भ्रातृ से रूसी भाषा के ब्रात्य की समानता है और इसका अर्थ भ्रातृसंघ होना चाहिए जो वंश परम्परा से जुड़े हों। उनके अनुसार ब्रात्य गण से भिन्न है किन्तु निश्चित अर्थों में एकदम भिन्न भी नहीं है। ब्रात एक छोटी इकाई थी और उसका मुखिया 'प्रथम' कहलाता था। जब कि गण का मुख्य 'राजा' कहलाता था। अथर्ववेद में कहा गया है कि ब्रात्य दिन और रात्रि सभी में पूजनीय है।¹⁴ उनके उच्च आदर का कारण उनका उच्च संयम था। जिसके कुल में पिता पितामह आदि ने सुरापान नहीं किया वे ब्रात्य हैं।¹⁵ सुरापान से देवता सुर कहलाए और सुरत्याग से ब्रात्य असुर कहलाए थे।

सिद्ध है कि ब्रात्य ऐसे व्रतपालकों का समूह था जो ब्रातों के साथ अर्थात् संकल्पपूर्वक संयम में निरत था। ब्रात्य दास भी नहीं थे और तत्सुभरतों के समान वैदिक भी नहीं थे। ये मगध में रहने वाले प्राग्वैदिक आर्य थे जो ब्राह्मण विरोधी थे। व्रत से ही ब्रात, समूह या जत्था बना है सम्भवतः वाराणसी का सहजात है।

भट्टो जी की व्याख्या के अनुसार सूत्र कहीं भी व्रत से ब्रात्य की उत्पत्ति पर रोक नहीं लगाता ना ही ब्रात से ब्रात्य का अर्थ स्थिर करता है।¹⁷

सायण के अनुसार ब्रात्य आंगीरसों का संघ था। ऐतरेय ब्राह्मण में ब्रातों के उद्धार के लिये देवों और पितरों से प्रार्थना है कि 'हमें हमारा मन लौटा दो ताकि हम अपने उल्लासमय ब्रातों को दुबारा अपने पास ले आये।'¹⁸ यह ब्रात्य आध्यात्म अर्थात् आत्मवादी चिन्तक थे जब कि देवपूजक वैदिक आर्य प्रवृत्तिमार्गी थे।

ब्रात्यों की साधना योगमूलक थी, तपस्या ध्यानमूलक थी तथा आचार अहिंसामूलक थे। अहिंसाधर्मी होने से वे पशुबलि का विरोध करते थे तथा द्रव्ययज्ञों से विरत थे। प्रो० गोविन्द चन्द्र पाण्डेय के अनुसार देवता के लिए मन्त्रपूर्वक द्रव्य-त्याग को यज्ञ कहते हैं।¹⁹

ब्रात्य की पहचान को लेकर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद रहा है। कुछ उन्हें वरुणोपासक, कुछ यायावर, कुछ शैव, कुछ अनार्य मानते रहे हैं।²⁰

अथर्ववेद के पूर्व भी ब्रात्यों का उल्लेख मिलता है, जहाँ वे विचरण करने वाले के रूप में दर्शाये गये हैं।²¹ ऋग्वेद में इनका सम्बन्ध आंगीरसों से बताया गया है।²² आंगीरसों का यतियों से और यतियों का असुरों से। हमारी शोध यह दिशा निर्देश करती है कि ब्रात्य प्राग्वैदिक तो थे किन्तु अनार्य नहीं थे।

यदि अग्निपूजा के उदाहरण देखें तो ब्रात्यों का सम्बन्ध भृगुवांगिरा की परम्परा से स्थापित किया जा सकता है। शतपथ ब्राह्मण²³ में 'भृगुर्वैवारुणिः' कह कर भृगु को वरुण का पुत्र कहा गया है। भृगु और आंगीरस यहाँ का प्राचीनतम पुरोहित वर्ग था। अथर्ववेद को भृगुवांगिराओं का सुमेहित वेद कहा गया है। इन ब्रात्यों का स्वरूप अथर्ववेद में अत्यन्त रहस्यात्मक प्रतीत होता है

जैसे कि वे यायावर थे। राजा से सम्मान और आतिथ्य इन्हें प्राप्त होता था। ब्रात्यों की उपस्थिति और अनुमति पर ही अग्निपूजकों के यहाँ अग्नि जलाई जा सकती थी। भृवांगिरा में अंगिरा घोर आंगीरस से सम्बन्धित हैं जिनने अथर्वा का प्रकाशन किया था। अंगिरा, ऋत के पालक, ऋत के प्रशंसक हैं। अतः समयानुक्रम से यह भी ब्रती और ब्रात्य कहलाए।

वैदिक देवमण्डल में वरुण के लिए स्वयं ऋग्वेद में ऋतपालक, धृतव्रत विशेषण दिया गया है। उसके व्रत (नियम) अटल बताए गए हैं²⁴

ब्रात्यों के सम्यक 'अध्ययन के लिए' कतिपय शब्द ध्यातव्य हैं, जैसे- अगस्त्य²⁵-इन्द्र के स्थान पर रुद्रों या मरुतों के उपासक (शैव), अनीन्द्र²⁶-इन्द्र की उपासना के विरोधी या इन्द्र विमुख ये वरुणोपासकों के लिए तथा यतियों के लिए प्रयुक्त है, अन्यव्रत²⁷-भिन्न आचार संहिता मानने वाले, अपव्रत²⁸-आचार भ्रष्ट और धर्म भ्रष्ट, अयज्ञ²⁹-यज्ञ न करने वाले, यज्ञ के आलोचक, अव्रत³⁰-व्रतों से हीन या शून्य, अस्नाता³¹-अदीक्षित, गुह्य साधना करने वाले (तांत्रिक), नग्न³³-दिगम्बर, धृतव्रत³⁴ -नियम और आचार की दृष्टि से अविचल, परावृक्त³⁵ प्रव्रजित, पृश्निमातर³⁶-धरती को माता समझने वाले- मातृपूजक, मायी³⁷ -मायाचारी, तंत्र और जादू का अभ्यास करने वाला, मुनि³⁸(मुनियों वातरशना पिशांग वसते मला अर्थात् वाररशन मुनि=वात+अशान्) प्राणवायु का नियंत्रण करने वाले तथा केवल वायु का सेवन करने वाले, योग तथा श्रमण और मौनेय का पालन करने वाले (मुनि), मुमुक्षु³⁹-मोक्ष की कामना करने वाले, यातुधन⁴⁰-जादू करने वाला मायाचारी (योगजन्य ऋषियों का प्राप्तकर्ता), योगी⁴¹-प्राण, अपान, व्यान और समान के साधक, वातरशना⁴³-दिगम्बर और वृषवत यथा शुद्ध शाकाहारी आदि।

इस दृष्टि से ब्रात्यों के सूत्र श्रमण धर्म से कहीं निकट थे। डॉ० जगदीश दत्त दीक्षित का विचार है कि विश्व के प्राचीनतम मान्य ग्रन्थ ऋग्वेद में दो धारायें प्रमुखता से दीख रही हैं। एक धारा, ऋषियों की थी जो काव्यमय रचनाओं में प्राकृतिक शक्तियों का स्तवन अपने योग-क्षेम, भौतिक समृद्धि प्राप्त करने और शत्रुनाश के लिए करते थे। वे जीवन को तेजस, भ्राजस और ओजस् की महिमा से मण्डित करते थे। दूसरी धारा उनकी थी- जो जीवन में कठोर व्रतों के महत्त्व को केन्द्र में रखकर त्याग तपोमय जीवन तथा ऋत के नियमों के अनुकूल मुनिवृत्ति से जीवन व्यतीत करते थे। पहली धारा देवोपासकों की थी जिनका नेतृत्व इन्द्र करते थे अतः वह ऐन्द्री संस्कृति थी। दूसरी धारा असुरमहत वरुणोपासकों की थी, जो वारुणी या श्रमण संस्कृति कही जा सकती थी। इन्हीं को प्रथम धारा ने ब्रात्य घोषित किया था। ऋषि गृहस्थ जीवन को महिमा मण्डित करते थे जबकि मुनि गृहत्यागी, एकाकी और परिव्राजक, भिक्षु जीवन के अभ्यासी थे। ऋषि वैदिक आर्य थे मुनि पूर्व वैदिक आर्य थे। इन दोनों धाराओं के मिश्रण से मुख्य धारा बनी जिनसे ब्राह्मण और श्रमण संस्कृति का विकास हुआ। मुनि और यति ऋषियों के समान होते हुए भी उनसे भिन्न थे।

असुरों तथा ब्रात्यों की परम्परा से विपरीत, देव पूजकों की ब्राह्मण परम्परा में उपनयनादि संस्कार से हीन, सामान्यतः वैदिक यज्ञ, देव पितृ कार्यों के लिए अनाधिकारी और पतित माने जाते थे।⁴⁵ इनसे विवाह आदि सामाजिक सम्बन्धों का निषेध था।⁴⁶ यह पवित्र स्मृतियों के घातक कहे जाते थे।⁴⁷ शिव को ब्रात्य होने के कारण ही दक्ष प्रजापति ने न तो यज्ञ में बुलाया था न पुत्री उमा का उनसे विवाह करना चाहा था।⁴⁸

सामवेद के ताण्ड्य ब्राह्मण, लाट्यायन, कात्यायन और आपस्तम्बीय श्रौतसूत्रों में ब्रात्यस्तोम विधि द्वारा इन्हें शुद्ध कर ब्राह्मण परम्परा में सम्मिलित करने का वर्णन है। लिच्छवि, नाथ, मल्ल आदि जातियों को ब्रात्यों में गिना जाता था।⁴⁹ महाभारत, सूत्रों और स्मृतियों में संस्कार का अर्थ शुद्धिकरण बताया गया है तथा उपनयन दीक्षा का संस्कार था। इसका मूलमंत्र सावित्री था। जो द्विज तीन पीढ़ी तक इसे सम्पन्न नहीं कराते थे उन्हें ब्राह्मण वर्णव्यवस्था से बहिष्कृत कर दिया जाता था। बौधायन ब्रात्य का अर्थ वर्णसंकर बताते हैं।⁵⁰ ताण्ड्य ब्राह्मण⁵¹ में ब्रात्यस्तोम विधि है जिसके द्वारा ब्रात्यों को शुद्ध कर वैदिक मुख्यधारा में ला सकते थे। उनको कर्मकाण्डों में दीक्षित कर उनका जात्युत्कर्ष कर देते थे और वर्णव्यवस्था में समायोजित⁵¹ कर लिया जाता था। अभिधान चिंतामणि

⁵² कोष में आचार्य हेमचन्द्र ने भी ब्रात्य का अर्थ आचार और संस्कार से हीन माना है।

ब्रात्य वैदिक समाज की भेदभावपूर्ण सामाजिक पद्धति की सूचना देते हैं साथ ही यह प्रमाणित करते हैं कि ब्राह्मण व्यवस्था में न्यूनतम शिक्षा लेना अनिवार्य था और जो इसकी उपेक्षा करे उन्हें सामाजिक रूप से दण्डित किया जाता था।⁵³ मजूमदार के अनुसार ब्रात्य वर्णव्यवस्था का पालन भी पूरी तरह नहीं करते थे।⁵⁴ यह व्रतों से गिरे हुए आर्य थे। इनके पुरोहित द्विजबन्धु कहलाते थे और ये नास्तिक थे। एस. शास्त्री कहते हैं कि व्याकरण के नियमानुसार व्रत से गिरा हुआ ही ब्रात्य है।⁵⁵ सामाजिक संगठन में वर्ण कर्तव्यों से गिर कर अनेक जातियों का अभ्युदय हुआ था। ऐसे अनेक परिव्राजक थे जो वैदिक धारा से पूर्ण स्वतंत्र थे तथा संस्कार नहीं कराते थे। मनु के अनुसार ब्रात्य सम्बन्धियों से सम्भवतः प्रव्रज्या के कारण नाता तोड़ लेते थे।⁵⁶

धर्मशास्त्रों का कथन है कि 'जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् द्विजुच्यते'। चन्द्रगुप्त मौर्य ने जैन धर्म अंगीकार किया था इसीलिए उसे ब्रात्य कहा गया। कहा जाता है कि शिवाजी जन्मना शूद्र थे किन्तु जब वह अत्यंत शक्तिशाली हो गए और अपना राज्याभिषेक चाहा तो ब्राह्मण पुरोहित धर्मसंकट में फँस गए। ब्राह्मणों ने एक कथा गढ़ी कि शिवाजी के पूर्वज राजस्थान के सिसोदिया क्षत्रिय थे जो महाराष्ट्र में आकर ब्रात्यक्षत्रिय हो गए थे। उन्होंने ब्रात्यस्तोमविधि से शिवाजी का शुद्धिकरण कर क्षत्रिय राजा मान लिया।⁵⁷

ब्रात्यों को लेकर इतिहास में भ्रान्त धारणाएँ हैं। एक ओर ब्राह्मण धर्मशास्त्र और स्मृतियों ब्रात्यों को संस्कारहीन और शुद्धिकरण न होने से शूद्रवत मानती हैं और उनसे भोजन तथा विवाह निषिद्ध करती हैं तो दूसरी ओर-

'ब्रात्यस्तु जायते विप्रात्पापात्मा भूर्जकण्टक।

आवन्त्यवाटधनों च पुष्पधनौशैख एव च।

मनु के अनुसार ब्राह्मण द्वारा ब्राह्मण स्त्री से उत्पन्न सन्तानों में भूर्जकण्टक, आवन्त्य, वाटधन, पुष्पध और शैख आते हैं। क्षत्रिय स्त्री और राजन्य ब्रात्य से झल्ल, मल्ल, लिच्छवी, नट, करण, खस और द्रविड़ आते हैं। वैश्व स्त्री से वैश्व ब्रात्य द्वारा सुगन्ना, आचार्य, करुण, विजन्म, मैत्र और सात्वत उत्पन्न होते हैं। कर्मकाण्डों और उपनयन छोड़ने तथा ब्राह्मणों से दूर रहने से पौण्ड्रक, औद्र, द्रविड़, कांबोज, यवन, शक, पारद, पहलव, चीन, किरात, दरद और खस ब्रात्य हैं और शूद्रवत हैं। मनुस्मृति, 20-23, 43-44 (द्र० रामशरण शर्मा, शूद्रों का प्राचीन इतिहास, दिल्ली, 1992, पृ० 290,) मनुस्मृति बताती है कि ब्रात्यों और ब्राह्मणों के योग से एक वर्णसंकर जाति उत्पन्न हुयी जिसको शैख कहते हैं⁵⁸

जहाँ ताण्ड्य महाब्राह्मण का कथन है कि प्राचीन काल में सभी के पूर्वज ब्रात (समूहों) में एक साथ रहते थे अतः सभी ब्रात्य थे। वहीं पाणिनि के अनुसार ब्रात्य ऐसा जनजातीय समूह था जो वैदिक समाज में भौतिक रूप से पिछड़ा था। देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय के अनुसार ब्राह्मण समाज के पुरोधाओं में अपने कर्मकाण्ड के प्रति लगाव और ऐसी संस्थाओं के प्रति अवमाननामय घृणा थी जो विरुद्ध चलते थे। इसी कारण वे ब्रात्य मुख्य धारा में नहीं आ पा रहे थे।⁵⁹ चट्टोपाध्याय का यह भी कथन है कि ब्राह्मण तकनीकी दृष्टि से समृद्ध थे जिससे वह प्रगतिशील हुए और जो ना कृषि करते थे ना व्यापार, वे भौतिक दृष्टि से हीन हो गए, वे ही ब्रात्य थे।

अथर्ववेद⁶⁰ में ब्रात्य का स्वरूप इस प्रकार बताया गया है कि उनका सिर तिरछी बंधी पगड़ी से ढका रहता था। वह काली कन्नी वाले वस्त्र पहनते थे।⁶¹ उनका ज्याहोड़ नामक विशेष प्रत्यंचा रहित धनुष होता था जो बांस से बनता था। उनके पास विपथ या प्राच्य रथ नाम की विशेष गाड़ी होती थी वह भी बांस से बनती थी।⁶² वह उबड़-खाबड़ भूमि पर भी चलाई जा सकती थी। इस प्रसंग में ध्यातव्य है कि गोरखपुर जनपद मगध के समीप पूर्वीभारत में स्थित है। यहाँ बांसों के बड़े-बड़े वन हैं। बांसी, बांसगाँव आदि बांसों की बहुतायत से ही ख्यात है। आज भी पूर्वांचल और मगध में बांसों को प्रभूत मात्रा में प्रयोग होता है। प्राच्यरथ- पूरब की गाड़ी का ही नाम हो सकता है वह चांदी के आभूषण पहनते थे।⁶³

ब्रात्यों की प्रमुख निम्न विशेषतायें थीं -

1. स्वाध्याय नहीं करते थे।
2. द्विजों के बीच रहते हुए भी अपना स्थान खो चुके थे।
3. अच्छे शब्दों को भी बुरा कहते थे (सम्भवतः वह देवभाषा संस्कृत की अवमानना करके प्राकृत भाषा की ओर झुकाव रखते थे)
4. कृषि या व्यापार नहीं करते थे।
5. निर्दोषों को दण्ड देते थे (सम्भवतः उनकी पृथक दण्ड संहिता थी)।
6. वह अदीक्षित होते हुए भी दीक्षितों की भाषा बोलते थे। (सम्भवतः बिना उपनीति हुए ही देवभाषा का प्रयोग कर लेते थे।)

उनके दान की विशेषता यह थी कि उनकी दान दी गयी सामग्री या तो अन्य ब्रात्य को अथवा मगध के ब्राह्मण को ही दी जाती थी। इसका निहित मन्तव्य यह है कि ब्रात्य स्वयं को अधिक परिष्कृत और श्रेष्ठ मानते थे क्योंकि दान सदैव अपने से ऊँचे, आदरणीय और पवित्र को ही दिया जाता है और ब्रात्य मगधवासियों को ही सर्वश्रेष्ठ मानते थे। मगध देश के ब्रात्यों को, ब्रह्मबन्धु कहा गया है। स्पष्ट है कि वे अन्य क्षेत्र के आर्यों से भिन्न थे और मगध उनका केन्द्र था।⁶⁴ ब्रह्मबन्धु मगध के उन ब्राह्मणों के लिये प्रयुक्त होता था जो जाति से ब्राह्मण तो थे किन्तु संस्कारों से गिर गए थे। ध्यान देने योग्य है कि वर्ण संकर जातियों में एक नाम मगध भी प्रयुक्त हुआ है और कल्पदुम कर्ता का मत है कि 'मगं दोषं दधति इति मगधः- अर्थात् जो दोषों को प्रश्रय दे वह देश मगध है।⁶⁵ यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य है कि वैदिक धर्मी, ब्राह्मण इस मगध

के अवैदिक क्षेत्र की गतिविधियों से क्षुब्ध रहते थे। अतः मलेरिया ज्वर जिसे तक्मन कहा गया है उससे प्रार्थना करते हैं कि 'तुम अंग मगध जाके बसो।' यानि वहीं बाढ़ आदि आने से महामारियों को फूलने-फलने का अवसर है, यज्ञादि की अग्नि से वातावरण शुद्ध नहीं होता और वहाँ के लोग शोकार्त रहे तो शत्रुकष्ट में है यह सान्त्वना तो रहे। अन्य कारण यह भी था कि मगध में मागी ब्राह्मण रहते थे जो चिकित्सा शास्त्र में प्रवीण थे और वहाँ इलाज सुलभ था। वैदिक, ऋषि अंग, वंग, कलिंग और मगध को अपवित्र मानते थे क्योंकि वहाँ जैन, बौद्ध और आजीवक जैसे नास्तिक मत प्रचलित थे तथा मगध में एक संश्लिष्ट संस्कृति बन रही थी जो वैदिक परम्परा से कई अर्थों में श्रेष्ठ थी।

पाणिनी के टीकाकार काशकृतस्न के अनुसार मगध में प्रव्रजन करने वाले रहते थे। उनके विहार से ही यह क्षेत्र बिहार कहलाया था।⁶⁶ ऋग्वैदिक आर्य मगधों से इसलिए भी द्वेष करते थे क्योंकि उन्हें अपने में नहीं मिला पाये थे। मूलतः ये मानव और ऐलवशियों से भिन्न थे। वैदिक, ब्राह्मणों का भाव इनके प्रति अच्छा न था। परम्परा विरोध से ही इन्हें अयज्वन (यज्ञों से हीन), अकर्मन (कृषि और व्यापार से हीन), अव्रत और अन्यव्रत (ब्राह्मण अनुष्ठानों और संस्कारों से हीन, अलग अनुष्ठानों वाले) कहा गया। आचार्य सायण का कहना है कि ब्राह्मणों का स्थान काफी ऊँचा था, वे अपने ही अनुष्ठानों को समर्पित थे। यदि कोई ब्राह्मण विद्वान और तपस्वी हो तो सवूपूज्य देवाधिदेव परमात्मा के तुल्य समझा जाता था। बहुत से विद्वान ऋषमवेद का वर्णन मानते हैं और बहुत से महादेव शिव का। कुछ के अनुसार ब्राह्मण अर्हत्तों के अनुयायी थे। इन्हें चैत्यपूजक कहा गया है और⁶⁸ सहिष्णु कहा गया है। ब्राह्मणसूक्त में स्पष्ट कहा है कि ये देहधरी आत्मायें हैं जिन्होंने आत्मा पर देह का आवरण पहना है, यह चैतन्य सृष्टि के स्वामी हैं, इन्होंने आत्म-साक्षात्कार किया है इस प्रकार ये हमें मुनि श्रमण परम्परा की ओर ही दिखाई देता है। वस्तुतः पशुरक्षा और कृषि के लिए यह द्रव्य यज्ञों का विरोध करते थे और आत्म संयम ही इनकी पहचान थी।

उपनिषदों में इनकी प्रशंसा है और आचार्य शंकर ने इन्हें स्वभावतः शुद्ध कहा है।⁶⁹

अन्त में निष्कर्ष यह आता है कि सम्भवतः ब्राह्मण मूलतः श्रमण परम्परा से सम्बन्धित थे क्यों कि आज भी जैन महाव्रतों और अणुव्रतों में विश्वास करते हैं। जो व्रत ग्रहण नहीं करते पर उनमें श्रद्धा करते हैं ऐसे सम्यग्दृष्टि भी जैन गृहस्थों में है। सम्भव है कि कुछ ब्राह्मण जन्मना ब्राह्मण व्यवस्था में हुए हों किन्तु कालान्तर में श्रमण धर्म में दीक्षित होकर वेदनिष्ठ ब्राह्मणों से अपने आध्यात्मिक गुणों से प्रशंसित भी हुए हों और यह भी सम्भव है कि वे कर्मणा शुद्ध, हो गए हों किन्तु ब्राह्मणों की इच्छा के विरुद्ध उनकी स्त्रियों से विवाह तथा सन्तानोत्पादन से वहाँ वर्णसंकरों में गिने गए हों। किन्तु संकेत स्पष्ट है कि ब्राह्मणों का निश्चित सम्बन्ध श्रमण और ब्राह्मण दोनों से था और उत्तरवैदिक संस्कृति दोनों के योगदान से बनी है। ब्राह्मण संस्कृति ने ब्राह्मणसूक्तों द्वारा इन्हें अपने पंथ में स्वीकार करने की विधि बनाई थी जो अब भी कोई अड़चन आने पर स्वीकार की जाती है। इस प्रकार परिस्थिति-रुचि के अनुसार नास्तिक नास्तिक और नास्तिक आस्तिक हो सकते हैं दोनों ओर प्रतिबद्धता के लिए दीक्षाविधियाँ हैं। इस आवागमन ने दोनों संस्कृतियों का विकास किया है और भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों को क्षरण से रोक कर अविच्छिन्नता प्रदान की है। ब्राह्मणों को प्राक्ऋग्वेदीय श्रमण संस्कृति और वैदिक संस्कृति के अन्तर्सम्बन्ध के रूप में देखा जा सकता है।

संदर्भ:-

1. कश्चिद विद्वत्तमं महाधिकारं पुण्यशीलं विश्वसम्मान्यम्।
2. ब्राह्मण विशिष्टं ब्राह्मणं मनुलक्ष्य वचनमिति मंतत्यम्॥
अथर्ववेद 15.1.1 पर सायण भाष्या। द्रष्टव्य एम0 ब्लूमफील्ड : हिम्स ऑफ अथर्ववेद : सैक्रेड बुक्स ऑफ दी ईस्ट जि0 गस्प आक्सफोर्ड 1897 सायण भाष्य सहित सम्पादित (एस0बी पंडित) मम्बई 1895-98.
2. ब्राह्मण तथा श्रमणसंघ का दार्शनिक विवेचन : भारतीय विद्या प्रकाशन दिल्ली, 1984, पृ0 75
3. एनल्स ऑफ दी भण्डारकर, ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना गग्न 195
4. द्रष्टव्य, ए0 चक्रवर्ती : जैन गजट (1925) भारतीय अनुशीलन, पृ0 16-17.
5. योगदर्शन 3-53.
6. द्रष्टव्य, देवेन्द्र मुनि शास्त्री : 'श्रमण संस्कृति और उसकी प्राचीनता; व ब्राह्मण संस्कृति सिद्धान्त और साधना, सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा, 1971, पृ0 8.
7. शर्ध शर्ध वा एवां ब्रात ब्रात गण गण सुशस्तिभि। अनुक्रामेय धीतिभिः। ऋग्वेद, 5.53.1, ग्ण34ण12ए ग्ण57ण5ए ताण्ड्य महाब्राह्मण ग्ण34ण1 द्रष्टव्य, ब्लूमफील्ड, वैदिक कन्कोर्डेंस। संघ - ऋग्वेद 1.163.8, गण- वही, 5.5.11, समूह- गोपथ, ब्राह्मण 6.79.51.

8. पाणिनि सूत्र 5.2.21
9. यहाँ एक ऋचा में अक्षों के तिरपन ब्रातों (संघों) की चर्चा की गयी है। ऋग्वेद ग्34ण8
10. हिन्दू देव परिवार का विकास, पृ0 10.
11. एन्शेंट इण्डियन कल्चर कान्टेक्ट्स एण्ड माइग्रेशन्स, कलकत्ता, 1970, पृ0 2-3.
12. ऋग्वेद ग्34ण8ण12
13. चट्टोपाध्याय, के0 पी0; एन्शेंट इण्डियन कल्चर कान्टेक्ट्स एण्ड माइग्रेशन। पृ0 23
14. अथर्ववेद 15.18.5
15. यस्य पिता पितामहादि सुरां न पिबेत स ब्रात्यः। तैत्तिरीय ब्राह्मण
16. पंचविंशं ब्राह्मण ग्टप्प12
17. पाणिनि सूत्र 5.3.113
18. द्रष्टव्य, देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय: लोकायत : पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस : न्यू देहली संस्करण ग् पृ0 640.
19. द्रष्टव्य, गोविन्द चन्द्र पाण्डेय : बौद्धधर्म के विकास का इतिहास : तथा वैदिक संस्कृति, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2001, पृ0 89.
20. द्रष्टव्य, राधकृष्ण चौधरी, दी ब्रात्याज इन एन्शेंट इंडिया, बनारस 1964, रमेशचंद्र मजूमदार एवं ए0 डी0 पुसालकर : दी वैदिक एज बम्बई 1951, पृ0 244-66, डी0 आर0 भण्डारकर : सम आस्पैक्ट्स ऑफ इंडियन कल्चर 1940, पृ0 43-45, मैकडोनल एण्ड कीथ : वैदिक इंडेक्स ऑफ नेम्स एण्ड सब्जेक्ट्स, भाग-2, मोतीलाल बनारसी दास, 1959, पृ0 382-85, सुकुमारदत्त, अलीबुद्धिस्ट मोनाशिज्म, लंदन, 1960, पृ0 44, हीरालाल जैन भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान भोपाल 1962, पृ0 18-19.
21. मौरिस ब्लूमफील्ड, हिम्स ऑफ दी अथर्ववेद, भूमिका, पृ0 26 तथा आगे।
22. ऋग्वेद, 8.3.9 तथा 5.45.7 अथर्ववेद 2.5.3, द्रष्टव्य, सीताराम दुबे, बौद्ध संघ का इतिहास, गोरखपुर 1968, वी0 एस0 पाठक की भूमिका पृ0 22
23. शतपथ ब्राह्मण प्प6ण8ण1
24. अदब्धनि वरुणस्य व्रतानि अया वयमादित्य व्रत।
25. ऋग्वेद, 1.70.2
26. वही, 1.33.1
27. वही, 5.20.2
28. वही, 5.40.6
29. वही, 7.6.3
30. वही, 1.33.5
31. वही, 2.15.5
32. गृह्येषु व्रतेषु, वही, 3.54.5
33. वही, 8.2.12
34. वही, 1.25.7
35. वही, 4.30.16
36. वही, 1.23.10
37. वही, 1.39.10
38. वही, 7.56.8 तथा 10.31.2
39. ऋग्वेद 10.104.15
40. ऋग्वेद 1.18.7 अथर्ववेद, 10.2.13
41. वही, 10.136.12
42. वही, 1.85.4
43. ब्राह्मण तथा श्रमण संस्कृति का दार्शनिक विवेचन : भारतीय विद्या भवन प्रकाशन, वाराणसी, 1984, पृ0 7-8
44. डॉ0 रेखा चतुर्वेदी, जैन आगम इतिहास एवं संस्कृति : अनामिका प्रकाशन, दिल्ली, 2000, पृ0 58
45. आश्वलायन गृहसूत्र 1.19.5.7, बौधायन गृहसूत्र, 3.13.5-6, वशिष्ठ गृहसूत्र 11.7, मनुस्मृति 2.39, याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.38, गोभिलगृहसूत्र 2-10.4
46. पाण्डुरंग वामन काणे : धर्मशास्त्र का इतिहास।
47. आर0बी0 भण्डारकर: शैविज्म, वैश्विज्म एण्ड अदर माइनर रिलीजियस सिस्टम : स्ट्रासबर्ग, 1913

शोध संचयन SHODH SANCHAYAN

ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

Bilingual journal of
Humanities & Social
Sciences

Half Yearly

Vol-3 Issue-1
15 Jan-2012

भारतीय

श्रमण-ब्राह्मण
धारा में व्रात्य

प्रो० रेखा चतुर्वेदी

प्रोफेसर, प्राचीन
इतिहास विभाग,
दीनदयाल उपाध्याय
गोरखपुर विश्वविद्यालय,
गोरखपुर

www.shodh.net

48. मनुस्मृति, अध्याय, 1.9.15
49. बौधायन धर्मसूत्र 1.9.15
50. ताण्ड्य महाब्राह्मण 15.1.4, कात्यायन श्रौतसूत्र 22.4, 27-28, पारस्कर गृहसूत्र 2.5, 42-43
51. द्र० कला कुमार, श्रमण संस्कृति सिद्धान्त और साधना, सन्मतिज्ञान पीठ, आगरा, 1971, पृ० 07
52. रामगोपाल : इण्डिया ऑफ वैदिक कल्पसूत्र : मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1983, पृ० 322-23.
53. ए० के० मजूमदार : दी हिन्दू हिस्ट्री : आर० एस० पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद, 1979, पृ० 574
54. अथर्ववेद का अनुवाद : तृतीय संस्करण, मैसूर, 1929
55. मनुस्मृति 10.23
56. द्रष्टव्य, बी० आर० अम्बेडकर : हे वर शूद्राज? वो० प्प एम०सी० पाण्ड्या, इन्टैलीजेन्ट मैन्स गाइड टू इण्डियन फिलासिफी, बम्बई, पृ० 272, 288 एवं 347
57. पं० रघुनन्दन शर्मा, वैदिक सम्पत्ति, बड़ौदा, संवत् 2004, पृ० 416
58. देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय : लोकायत : ए स्टडी इन्टू हिन्दू मटीरियलिज्म, पीपुल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, संस्करण, टप्प्प पृ० 182
59. वही, पृ० 169
60. अथर्ववेद, 15.2
61. कात्यायन श्रौतसूत्र 22.3.15 तथा 22.4.214
62. अर्थर बेरीडेल कीथ : दी रिलीजन एण्ड फिलॉसिफी ऑफ दी वेद एण्ड उपनिषद् (अनु० सूर्यकान्त), मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 1965, भाग-2, पृ० 416-17, मैक्डोनेल एण्ड कीथ : वैदिक इण्डेक्स भाग-2, पृ० 341-44 हॉपकिन्स : रिलीजन ऑफ इण्डिया, पृ० 179, पंचविश ब्राह्मण 17.1:4, जैमिनीय ब्राह्मण 2.222 लाट्यायन श्रौत सूत्र 8.6.9
63. लाट्यान श्रौतसूत्र, 8.2.28, एस०सी० सरकार : सम आस्पैक्ट्स ऑफ अर्लियेस्ट सोशल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, लन्दन, 1928, पृ० 41, 46.
64. द्र० राज किशोरमणि त्रिपाठी : सरवार परिचय, संस्कृत सेवा संस्थान, गोरखपुर, 1999, पृ० 88
65. वही, पृ० 89
66. आचर्य, सायण, व्रात्यकाण्ड की भूमिका।
67. भागचन्द्र जैन भास्कर, भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का अवदान, वाराणसी, 1999, पृ० 30-31, तुल० मोहन लाल मेहता : जैन कल्चर ए ब्रीफ इन्ट्रोक्डक्शन, पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी, पृ० 7 तथा हीरालाल जैन, जैनधर्म का उद्गम और विकास, भोपाल, 1962, पृ० 18-19
68. व्रात्यस्वत्वं प्राणैव ऋषिस्ता विश्वस्य सत्पतिः, प्रश्नोपनिषद् 2.11